ISSN (Online) 2582-9327

IJARSCMT

International Journal of Advanced Research in Science, Commerce, Management and Technology

Impact Factor: 5.781

Volume 4, Issue 1, January 2023

हिंदी उपन्यासों में दलित विमर्श
(‘परिशिष्ट’ और ‘महाभोज’ के संदर्भ में)

प्रा. डॉ. नारायण बागुल

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

वसंतराव नाईक कला व वाणिज्य महाविद्यालय, मुरुड जंजीरा, जि. रायगड

narayanbagul.1968@gmail.com

दलित साहित्य की अवधारणा वास्तव में दलित की अवधारणा से जुड़ी है। दलित के कई संदर्भगत अर्थ निर्धारित किये गये हैं एक अर्थ है ‘शोषित’, एक अर्थ है ‘पराजित’, जिसमें दमित, उपेक्षित आदि अनेक अर्थ शामिल हैं, एक अर्थ ”पददलित’ है, जिसमें ‘पैरों से कुचला,’रौंदा हुआ आदि अर्थ समाविष्ट हैं।माताप्रसाद ने दलित शब्द के अनेक प्रयोगात्मक अर्थ बताये हैं, जिनमें ‘चांडाल’, ‘अस्पृश्य’, ‘अछूत’ आदि शामिल हैं।दलित शब्द का व्यापक सामाजिक अर्थ ‘गुलाम’, भूमिहीन’ भी है दलित साहित्य युगों के शोषण से उपजी सामाजिक परिवर्तन की साहित्यिक क्रांति है। दलित साहित्य ने स्पृश्य – अस्पृश्य माने जाने वाले समाज को मंच उपलब्ध करवाया, जिसके माध्यम से वह अपने उपर हुये अत्याचार, जोर जुल्म तथा शोषण को मुक्त कर सके, असमानता तथा अन्याय को दिखाकर उसके प्रतिकार में अपेक्षित सहयोग जुटा सके। यद्यपि दलित साहित्य का वास्तविक आरंभ तो मराठी से ही हुआ और बाद मे हिंदी मे भी अनेक साहित्यकारों द्वारा दलित साहित्य लिखा जाने लगा। आज दलित साहित्यकारों की संख्या बढने के कारण रचना कार्य और सर्जना की अनुभूतियाँ भुक्तभोगी यथार्थ के नाम पर दलित साहित्य को प्रश्नों के कठघरे में खड़ा करने लगी है। ‘गैरदलित लेखकों द्वारा रचे गये दलित साहित्य को कल्पित तथा मनगढ़ंत कहा गया है। दलित साहित्यकारों का कार्य क्रांतिकारी लेखन द्वारा शोषण और उत्पीड़न से रक्षा करना है। उनका साहित्य जाति और धर्मगत उत्पीड़न से समग्र मानवजाति को आर्थिक और सामाजिक शोषण से मुक्ति दिलाता है। दलित साहित्य दलित समुदाय की एक सांस्कृतिक पहचान बनाता है तथा सामाजिक अन्याय, मानवीय यातनाओ तथा शोषण से मानवता की रक्षा की अपेक्षा रखता है। दलित साहित्य की पहचान यही है कि इसने धरती से जुड़े लोगों की समस्याएं तथा दुर्दशाओं का समाधान बताया। कमलेश्वर ने दलित साहित्य को मानवतावादी साहित्य कह कर उसकी उदात्तता स्पष्ट की। विशुद्ध मानवता की मांग करने वाला यह साहित्य दलित जीवन की भयावह यातनाओं का खुला चित्रण करता है इसी कारण आज दलित साहित्य की आवश्यकता तथा महत्व है।

यद्यपि हिंदी उपन्यास साहित्य का आरंभ 1880 ईस्वी के आसपास हो गया था, लेकिन सही मायनों में विकास प्रेमचंद के कथालेखन से हुआ। हिंदी कथासाहित्य में दलित विमर्श प्रेमचंद की रचनाओं में पूरी संवेदना के साथ उभरकर सामने आता है। प्रेमचंद के सभी उपन्यासों में दलित जीवन का विविध चित्रण मिलता है, जिससे उनके गहरे मानवतावादी व दलित पक्षधर होने का परिचय मिलता है। प्रेमचंद के बाद भी दलित जीवन का चित्रण उपन्यासों में होता रहा। जैसे, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, अज्ञेय, अमृतराय, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, ब्रजभूषण, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, गिरिराज किशोर, मन्नू भण्डारी आदि ने दलित जीवन को केंद्र में रखकर उपन्यासों की रचना की जिनमें में दलितों की समस्यायें किसी न किसी रुप में सामने आई है तथा दलित जीवन का यथार्थ अंकन हुआ है। प्रेमचंद से पूर्व हिंदी उपन्यासों में बदलते हुए भारतीय समाज के विभिन्न आयाम सामने आते है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अलग अलग सामाजिक, राजनीतिक कारणों से जनता की सामाजिक दशा और मानव मूल्यों में हो रहे परिवर्तनों के फलस्वरूप पहले की गतिहीन सामाजिक आस्थाओं के प्रति आस्था में कमी आ जाने से जो स्थितियां पैदा हुई, उनका असर किसी न किसी प्रकार से हिंदी उपन्यासों पर दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यासकारों को यथार्थवादी दृष्टि दी तथा अपने उपन्यासों में मानवतावादी भूमिका से अनुप्राणित होकर दलितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए अछूतोध्दार व दलितोध्दार के प्रभावशाली अंकन अपने उपन्यासों में उपस्थित कीए। उन्होंने हिंदी उपन्यासों को जो दृष्टि दी, वह आज भी विकसित हो रही है। इसी विकास के परिणाम स्वरूप दलित वर्ग से संबंधित उपन्यासों की रचना भरसक मात्रा में हो रही है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में दलित वर्ग को केंद्रित करके उपन्यास लेखन की जो परंपरा चली आ रही है वह अब जारी है। इसश्रृखला के उल्लेखनीय उपन्यासकारो में गिरिराज किशोर का उपन्यास ‘परिशिष्ट’ की गनना की जा सकती है। एक सशक्त कथाकार, नाटककार तथा आलोचक होने के साथ साथ गिरिराज किशोर एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार हैं। ‘चिडियाघर’, ‘दावेदार’, ‘तीसरी सत्ता’, यथा प्रस्तावित, यातनाघर, दो यात्राएँ, इंद्र सुनें, लोग, असलाह, परिशिष्ट आदि उनके उपन्यास है काफी चर्चित रहें। गिरिराज किशोर व्यापक संदर्भो मे सामाजिक सरोकारों के रचनाकार है जिन्होंने भरसक मात्रा में समाज में निहित जाति व्यवस्था और दलित समस्या को लेकर गंभीर लेखन किया है। इस संदर्भ में उनका ‘परिशिष्ट’ 1984 में प्रकाशित

उल्लेखनीय उपन्यास है जिसमे विशेष रुप से संस्थाओं में दलित विद्यार्थियों के साथ जो अमानवीय व्यवहार तथा अत्याचार होता है, उसे केंद्रीय विषय बनाया गया हैयह दलित छात्रोंकी शिक्षा को उजागर करनेवाला उपन्यास है, जिसकी पृष्ठभूमि उस समय को दर्शाती है जब पहली बार भारत सरकार ने दलित छात्रों के लिए आई. आई. टी. आदि शिक्षा संस्थाओं में सीटें आरक्षित की थी। लेकिन ऐसे समय में भी छात्रों को बहुत भयानक समस्याओं से गुजरना पडा। उपन्यास की कथावस्तु आई. आई. टी. संस्थान है जहाँ शिक्षा प्रसार हेतु दलितों को शिक्षा प्राप्ति के लिए आरक्षण सुविधा रखी गई है। लेकिन सवर्णों की संकुचित मानसिकता के चलते लेखक ने प्रश्न उपस्थित किया हैं कि आरक्षण से कितने दलित लाभान्वित होंगे ? उपन्यासकार ने एक पर्याप्त व्यापक फलक पर इस समस्या को उठाने की कोशीश की है। आरक्षण की समस्या का समाधान ढूँढना आज की आवश्यकता है उपन्यासकार ने दावा किया हैं कि आरक्षण से दलितों को लाभ हुआ मगर उनकी स्थिति मे कुछ बदलाव नही आया। सवर्ण समाज की मानसिकता आज भी ज्यों कि त्यों बनी हुई है। इसी का चित्रण 'परिशिष्ट' उपन्यास में किया गया है।

'परिशिष्ट' उपन्यास की कथा कुल 12 भागों में विभाजित है। इसमें दिल्ली, सलेमपुर, सिहसा, कानपुर आदि का परिवेश रहा है। राजनीतिक नेता का व्यवहार, दलितों के बारे सरकारी अधिकारियों कादृष्टिकोण, आई. आई. टी का कारोबार, राजनीतिक भ्रष्टाचार, संसद का कार्य, सवर्णो की पारंपरिक मानसिकता, दलितों का बदतर जीवन आदि का यथार्थ अंकन 'परिशिष्ट' उपन्यास में गिरिराज किशोर ने किया है। अनुकूल उपन्यास का नायक तथा प्रमुख पात्र है। रामउजागर और अनुकूल पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने दलित जीवन की समस्याओं को वाणी प्रदान की है। अन्य पात्रों में बावनराव आधुनिक विचारों वाले तथा आदर्श पिता हैं जो अपने बेटे अनुकूल को इंजीनियर बनाना चाहते थे नीलम्मा प्रगतिवादी सवर्ण पात्र, अनुकूल पढालिखा दलित, रामउजागर जातीय व्यवस्था का शिकार पात्र रहा है। गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' उपन्यास दलित जीवन का दस्तावेज है क्योंकि यह अभिजात्यों द्वारा दलित प्रतिभा को उभरने न देने, उसे ढंके रखने तथा अनादर या उपेक्षा को सूचित करता है। दलित समाज का जीवन और तमाम आरक्षणों के बावजूद उनके सामने जी पाने की समस्याएं, प्रशासन की लापरवाही जातिगत वैमनस्य आदि प्रश्नों को उठाता 'परिशिष्ट' एक प्रासंगिक रचना हैं।

कुलमिलाकर कहा जा सकता है कि 'परिशिष्ट' गिरिराज किशोर की एक महत्वपूर्ण रचना है। उपन्यासकार के अनुसार सरकार दलितों के लिए सुवधायें दे रही हैं, विकास का प्रयास कर रही है। आरक्षण का आधार लेकर दलित युवाओं को उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश मिल रहा है। परिणामस्वरूप दलित समाज में चेतना जाग्रत हो रही हैं परंतु सवर्ण का सहयोग मिलना भी जरूरी है। 'परिशिष्ट' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने दलित एवं सवर्णो की मानसिकता को दर्शाया है। उपन्यास का नायक दलित समाज का प्रतिनिधि पढालिखा अनुकूल एक संकल्पशील युवा है,जो सवर्णो की त्रासदी सहता है, भोगता है पर विचलित नही होता। वस्तुतः 'परिशिष्ट' उपन्यास संघर्ष और संकल्प की महागाथा है।

मन्नू भण्डारी का 1979 में प्रकाशित 'महाभोज' उपन्यास राजनीति में पिसते दलित समाज की दास्ताँ है। महाभोज' भारतीय समाज का उपेक्षित वर्ग – दलितों के उत्पीड़न के संदर्भ में सत्ताहीन राजनीतिक दलों की साजिश की कहानी के यथार्थ को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है। इस उपन्यास के कथ्य के केंद्र में दलित जीवन का यथार्थ, उसका शोषण अत्याचार आदि प्रत्यक्ष रूप में तो नहीं है, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप में भी जो दलित जीवन का संदर्भ है, उससे दलित जीवन की वास्तविकताएं काफी हदतक खुलकर सामने आती है। 'महाभोज' उपन्यास मूलतः राजनीतिक परिप्रेक्ष्य मे लिखा गया है अतः दलितों के घर जला देने की घटना गौन हो जाती है। इसके बावजूद भी उपन्यास में यह घटना अपनी मार्मिकता के साथ अपना स्थान बनाये रखती है। इस घटना से स्पष्ट होता है कि सरोहा गांव में दलित बस्ती में कुछ झोपडियों में आग लगाकर जानवरों और दलितों को आग में भून दिया जाता है। संपूर्ण उपन्यास आज की सच्चाई को उजागर करता है कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में गरीब व श्रमजीवी दलितों के प्राणों का महत्व किसी पशु से अधिक नही है। 'महाभोज' उपन्यास में लेखिका ने दलित वर्ग के उपेक्षित जीवन का चित्रण करते हुये समयगत सच्चाई को उजागर किया है तथा आज के स्वार्थी राजनेताओं की पोल खोली है।

'महाभोज' उपन्यास का आरंभ है – बिसू की मृत्यु, जिसकी लाश सरोहा गाँव में नजर आती है। बिसू की मृत्यु से पहले गाँव में आगजनी की घटना घटी थी। इन दो घटनाओं की प्रतिक्रिया तथा सहानुभूति दिखाने हेतु सत्तासीन राजनीतिक दल बिना किसी भी तरह की मानवीय संवेदना के सत्ता की राजनीति के लिए इस्तेमाल करते है। उपन्यास में न तो उन दलितों को किसी भी प्रकार की राहत या उनके जीवन के दुखो को कम करने की किसी कोशिश का कोई मानवीय उपाय है, जिनके घर जले है या आदमी जले और न ही बिसू के परिवार के प्रति किसी की कोई संवेदना अभिव्यक्त हो पाती है। देश की तथाकथित आजादी और दलितों के हितों का दिखावा 'महाभोज' उपन्यास में स्वतः उदघाटित होता चलता है। जाहिर है कि सत्तासीन और विरोधी दल के नेता दलितों के प्रति सहानुभूति दिखाकर वोट बटोरने हेतु नकली संवेदना प्रकट करते है। उपन्यास में वोट की इस राजनीति मे दलितों के साथ जो अमानवीय अत्याचार होते रहे है वे इस बात को सिध्द करते है कि शक्तिशाली हमेशा कमजोरों का शोषण करेंगे। नमिता सिंह लिखती है –"महाभोज के दलित और अभावग्रस्त लोग आज भी आतंक के सायें में जी रहे है, वे मनुष्य नही केवल वोटर है।' कुलमिलाकर कहा जा सकता है कि 'महाभोज' की प्रासंगिकता आज भी जरूरी हस्तक्षेप है जो

स्वार्थी नेताओं को समझने के लिए सार्थक बयान करते हुए दलितों की विवशता और असहाय स्थितियों का जींवत दस्तावेज बन जाता है।

संदर्भः

[1]. दलित साहित्य और समसामयिक संदर्भ – डॉ. श्रवण कुमार मीना
[2]. हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग –––––– कुसुम मेघवाल
[3]. दलित साहित्य एक मूल्यांकन –––– प्रो. चमनलाल
[4]. दलित चेतना और समकालीन हिंदी उपन्यास–––– डॉ. मुन्ना तिवारी
[5]. हिंदी उपन्यास समकालीन विमर्श ––– डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी